शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मई 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

'कुर्राटी' उपन्यास में भील संस्कृति

डॉ. सोनाली निनामा
तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति अध्ययन शाला
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय
इंदौर, मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

उपन्यास वैश्विक सम्प्रेषण का सबसे सशक्त माध्यम होता है। उपन्यासकार अपनी लेखनी के माध्यम से जीवन मूल्यों, सार्वभौमिक सत्यों और सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन संदर्भों को सम्प्रेषित करता है। एक कथा के माध्यम से वह व्यापक फलक को समाज के सामने प्रेषित करता है। समाज, समुदाय और साहित्यकार के बीच जब रचना की सृजनात्मकता एक मत से स्वीकृत होती है तो वह रचना साहित्य में अपना वि शिष्ट स्थान बना लेती है। डॉ. सतीश दुबे कृत 'कुर्राटी' उपन्यास भी ऐसी ही रचना है जो समाज में ग्रामीण आदिवासी लोगों की स्थिति और उनके वास्तविक स्वरूप को सामने लाती है। 'कुर्राटी' उपन्यास की मूल संवेदना गांव देहात की है। उपन्यास में आदिवासियों के सामाजिक उत्थान-पतन तथा उनकी संस्कृति के अनेक सत्यों को उजागर किया है।

प्रस्तावना

'भील' शब्द संस्कृत भाषा के भिल्ल का तद्भव माना गया है। पश्चिम निमाड तथा गुजरात के कुछ क्षेत्रों में आज भी यह शब्द प्रचलित है। भील प्रजाति की परिगणना ईसा से पांच-छः सौ वर्ष पूर्व की प्रजाति-तालिका में होना माना जाता है। इसकी पुष्टि ग्रामीण आदिवासी क्षेत्रों में स्थित प्राचीन स्मारकों के बारे में प्रचलित परम्परागत जनश्रुतियों से भी होती है।"1

डॉ. सती श दुबे ने अपने उपन्यास 'कुर्राटी' के माध्यम से भील जनजाति की संस्कृति बडे रोचक ढंग से प्रस्तुत की है। श्री वसंत निरगुणे ने अपनी भूमिका में कहा है कि "कुर्राटी शब्द भीली चेतना का प्रतीक है। भावावेग से निकले इस उद्घोष अथवा स्वराघात का कोई भी अर्थ हो सकता है। यह कहना मुश्किल है , लेकिन यह उद्घोष पूरी तरह जाति समूह के मनोविज्ञान को प्रकट करता है। यह सृष्टि ओंकार स्वर विस्फोट का परिणाम है। भीलों की कुर्राटी भी उसकी स्मृति शेष कही जा सकती है। इतने गहरे अभिप्राय को वही समझ सकता है जो भीलों की आदिम संवेदना के बहुत निकट रहा हो।"2

फाग का रंग चारों और बिखरा हो , ब्याह, सगाई की धूम हो, मादल की धाप और उस पर महुए-ताडी के नशे में झूमते हुए झाबुआ के भील चाहे रात्रि का तीसरा पहर हो या दोपहर के सूरज की तपन भीलों की कुर्राटी कानों को सुनाई पडती रहती है।

प्रकृति की गोद में निवास करने वाले इन भीलों का अपना अलग ही जीवन है। खान -पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज, मान्यताएँ, प्रथाएं सभी एक वैशिष्ट्य लिए है। जंगली जानवरों के बीच निडर होकर विचरने वाला तीर , धनुष तथा गोफन से सुसज्जित नग्न भील अब शहर की संस्कृति से प्रभावित होता जा रहा है। आज का भील तीन वर्गों में बँट गया है। एक वह जो जंगल का राजा है। दूसरा वह जो हर और गांव के बीच अपनी पहचान बनाने के लिए जूझ रहा है और तीसरा

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मई 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

वह जो पूरी तरह से शहरी बन चुका है और ग्रामीण एवं शहरी दोनों संस्कृति के बीच सामंजस्य तालमेल बैठाने में प्रयासरत है।

कुर्राटी उपन्यास में भील संस्कृति

उपन्यास का नायक नागराज शर्मा जो स्वयं मानवशास्त्र का विद्यार्थी रहा है इन छात्रों के जीवन को निकट से जानने के लिए आतुर रहता है। वह अपने बिदाई भाषण में स्वीकार भी करता है कि- "मानवशास्त्र का विद्यार्थी होने के नाते , सुदूर क्षेत्रों में फैली हुई जनजातियों के प्रति मेरी विशेष रूचि रही है। इसे संयोग या सौभाग्य माना जाना चाहिए कि नौकरी के बहाने मुझे महत्वपूर्ण आंचलिक जनजाति की महत्वाकांक्षी युवा पीढी से साक्षात्कार का अवसर मिला...।"3

यहाँ उपन्यासकार ने भीलांचल में प्रचलित तीज , त्यौहार, विवाह मेले जैसे उत्सवों का सजीव चित्रण किया है। ये पर्व , मेले भील संस्कृति के परिचायक है। उत्सव समारोह हमारे सांस्कृतिक जीवन के अभिन्न अंग है। इन उत्सवों समारोहों को जीवन के उत्साह और उमंग का प्रतीक माना है। समीक्षक श्री कृष्णकांत दुबे ने पश्चिमी भारत के मध्य पहाडियों , नदियों, बंजरों या वृक्षों से युक्त भीली-भाषी क्षेत्र पर लिखे गए इस उपन्यास पर टिप्पणी देते हुए लिखा है कि - "इस अंचल के जितने भी पर्व मेले हैं सब युवा वर्ग को समर्पित है। वे उन्हीं के नृत्य गीतों से सँवरते हैं। इस अंचल का आदिवासी युवा जब अपने जंगल फलियों, वनग्रामों के बीच रहता है। अपने को सुरक्षित पाता है , उन्मुक्त रहता है। लेकिन ज्यों ही वह अपने ही आगे जंगल-पहाडों की छाँव में निकल हर कस्बों की सीमा छूता है तब अपने को अजनबी पाता है।

भील जनजीवन में प्रचलित विवाह संबंधित विविध परम्पराओं का भी लेखक ने उल्लेख किया है। जिसमें भगोरिया प्रमुख है। भगोर देवता की स्मृति में मनाया जाने वाला भगोरिया उत्सव भीलों का एक बडा पर्व माना जाता है। इस उत्सव को सम्पन्न करने के लिए दूर गांव गया व्यक्ति भी समय पर घर लौट आता है। होली के एक सप्ताह पूर्व से कस्बों और गांवों में लगने वाले बाजार या हाट के दिन ये उत्सव बडी धूमधाम से मनाया जाता है। उस दिन ये लोग अपने परिवार के साथ सज-संवरकर उल्लास उमंग के साथ अपने पारम्परिक लोकगीतों की धुन में खोए भगोरिया का आयोजन होने वाले कस्बों या शहरों की सीमाओं को छूते है। जीवन साथी चुनने के लिए युवकों की टोली में से कोई एक किसी एक लडकी को गुलाल मल देता है और दूसरा भी आपत्ति न होने पर प्रसन्नता से बदले में गुलाल मल देता है तो दोनों में विवाह निश्चित समझा जाता है। इसके विपरीत चेहरे से गुलाल साफ कर देने का अर्थ होता है अस्वीकृति।

"उपन्यास में दापा यानि विवाह के समय वधू मूल्य देने की विवाह संबंधी प्रथा का उल्लेख भी उपन्यासकार ने शिवलाल नामक पात्र के माध्यम से किया है।"4

भील समाज में महिलाओं की वेषभूषा आभूषण एवं सौन्दर्य प्रसाधन के इतर साधनों के संबंध में सभ्य समाज से भिन्न मान्यताएं होती हैं। इनकी वेषभूषा और आभूषणों के संबंध में डॉ.. सतीश दुबे लिखते हैं -"लाल, पीले, कत्थाई या काले रंग का बेलबूटे लिए घुटने तक का घाघरा , वक्षस्थल पर किसी ने झुलडी , कांछली या कुर्ती और उस पर लुगडा या ओढनी पहन रखी थी बालों को गुथने का तरीका सबका अलग-अलग। युवतियों ने आगे बालों की चोटियाँ बनाकर पीछे की और गूंथी थी तो अधेड उम्र की औरतों की स्टाइल

अपनी पसंद के अनुसार। प्रायः सभी सुन्दरियों ने अपने मांथे पर बोर, बाजुओं में भोरीला, गले में तागली, ललाट के मध्य टीलडो नाक में नथनी , कान में भोरलियों , पैरों में नेवरी , तोडे या झांझरी, विवाहितों के पैरों की अँगुलियों में बिसुडी।"5

इसके अतिरिक्त ये आदिवासी महिलायें शरीर को अंलकृत करने के लिए उस पर कलात्मक चित्र बनवाती है। उसकी इस साज -सज्जा से उनके सौन्दर्यशास्त्र संबंधी ज्ञान का सहज ही आभास मिल जाता है। इनके लोककला और गोदने में अन्तर होता है।

"प्रो. फिलिप जया और मेरी को बताते हैं कि - "गोदना के बारे में बात कर रही है। गोदना इन जनजाति में शारीरिक सौन्दर्य को बढाने का प्रतीक नहीं, लोककलाओं के प्रति इनकी गहरी अभिरूचि का परिचायक है। वैसे अपने घर-द्वारों पर जिन चित्रों को मांडते हैं, उसका लोहा लोककला क्षेत्र में हर जगह माना जाता है। गाँव पिटोल की भूरी बाई जैसे लोककलाओं के कई कलाकार इनके बीच है।"6

भीलों की लोक संस्कृति के नियामक विविध उपादानों के अन्तर्गत इनके मनोरंजन के साधन लोकनृत्य, लोकगीत, पर्व, उत्सव आदि भी समृद्ध भारत के सर्वाधिक विकसित आधुनिक कलाकारों को भी प्रेरणा एवं वैभव प्रदान कर सकती है। सम्भवतः इसीलिए गणतंत्र दिवस पर भारत सरकार द्वारा आयोजित समारोह में जन जातीय समाज के लोकनृत्य का एक नियमित कार्यक्रम समाहित किया जाता है। ये लोकगीत एवं लोकनृत्य इनके जीवन में नवीन शक्ति एवं उत्साह का संचार करते है। इन लोकगीतों में सुख-दुख, आशा-निराशा आदि की सहसा और सरस गीतात्मक अभिव्यक्ति होने के कारण लोक जीवन की गहराईयों को समझने का सरल व सीधा माध्यम है।

लेखक ने उपन्यास में लोक की सामाजिक , सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक , चेतना को भी बहुत ही व्यापक रूप से उभारा है। अपनी परम्परा और संस्कृति से जुडे रहना आदिवासी युवाओं की मूल पहचान है। आज भी ये पाश्चात्य संस्कृति की अंधी दौड में शामिल न होकर अपनी संस्कृति की धारा में जी रहे हैं। उपन्यास में आदिवासियों एवं जनजातियों के कल्याणार्थ स्थापित व्यवस्था तंत्र में मिल जाने के बाद भी कि नौकरी और नेतागिरी साथ-साथ नहीं चलती , जगाती है सहृदयता , अनुशासनप्रियता और आत्मीयता होस्टल के छात्रों में एक नवचेतना जगाती है। बौद्धिक वातावरण के साथ ही जनजा तीयों की वह सम्पदा भी सामने आती है , जो गीतों , लोकोक्तियों तथा उल्लास के गीतों में संरक्षित है।

डॉ.. दुबे कृत कुर्राटी उपन्यास विपरीत प्रवाह शैली का है कुर्राटी का अंत आदिम जाति कल्याण विभाग द्वारा संचालित एक आदिवासी छात्रावास के अधीक्षक नागराज शर्मा के बिदाई भाषण से होता है। यह बिदाई भाषण वर्तमान राजनीतिक सामाजिक परिवे श और परम्परागत जाति व्यवस्था की विसंगतियों का है बीसवीं शताब्दी में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में हमारे सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवे श में जो परिवर्तन हुआ है उसे एक अनुभवी व्यक्ति द्वारा पूरी संजीदगी से किया गया चित्रण है। दि शा प्रदान करने में उन शक्तियों का बहुत बडा हाथ है जो कल तक समाज की मुख्य धारा से कटी हुई थी। जैसे आदिवासी और हरिजन ये वे शक्तियां है , जिन्हें मुक्तिबोध इत्यादि 'जन' कहते हैं। संविधान के परिशिष्ट के रूप में

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मई 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

परिणगित इस कोटी ने हमारे विगत इतिहास और जीवन के सामने जो चुनौतियां उपस्थित की हैं। उसका सामना करने का हमारा परम्परागत जीवन मूल्यों में तो न तो अवसर है न ही इच्छा। नागराज शर्मा अपने बिदाई भाषण में इस तथ्य की और स्पष्ट संकेत करता है अपने अधिकार के प्रति सजगता एवं शोषण के विरूद्ध मोर्चाबंदी की चेता का उसमें जबर्दस्त विकास हुआ है।

राजनीतिक सोच दलबंदी के कारण भले ही संकुचित हो गया किंतु व्यक्गित सोच बढने का दायरा बढा है। इसी व्यक्तिगत सोच के दायरे में बढने का परिणाम है 'शालवनों के द्वीप', 'आल्मा कबूतरी', खलीफों की बस्ती जैसे उपन्यास। यह प्रवृत्ति केवल हिन्दी उपन्यासों की ही नहीं अन्य भारतीय साहित्य की भी है। सच तो यह है कि स्वतंत्र भारत में जिन सामाजिक क्षेत्रों का विस्तार हुआ है जिन सांस्कृतिक मूल्यों को चुनौती मिली है , जिन राजनीतिक तत्वों की लालसा बढी उन सबका विवेचन और चित्रण आदि किसी विधा में संभव है तो वह उपन्यास ही है। पश्चिम में उपन्यास भले औद्यौगिक क्रांति की संतति हो , भारत में तो वह स्वतंत्र भारत के विघटित जीवन मूल्यों और जीवन आकांक्षाओं का ही सहचर है। आदिवासी की समस्याओं में स्पन्दित और उनकी जीवन संस्कृति से आंदोलित उपन्यासकार ने एक छोटे केनवास पर उनके विराट इतिहास और उनके समृद्ध जीवन को उन्मुक्त प्रकृति और सम्पन्न संस्कृति के समानातर चित्रित कर एक पठनीय उपन्यास की रचना की है , साथ ही समाज को यह सोचने पर विव श भी किया है कि "आदिवासियों की कल्याणकारी योजनाओं के भाल पर अमानवीय लम्बे तिलक क्यों है?"7

मूल्यविहीन राजनेता भ्रष्ट शासकीय कर्मचारी केवल कागज पर चलती आदिवासी कल्याण योजनाएं और इन सबके बीच पिसते बेबस आदिवासी की मनोव्यथा का चित्रण उपन्यास में हुआ है। लेखक ने आदिवासियों के शोषण के चित्रण के साथ ही शोषण के विरूद्ध तथा सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए उनके मन में घुमडती व्याकुलता और अधिकार प्राप्ति की चेतना को भी यथा प्रसंग चित्रित किया है। उपन्यास के नायक नागराज के माध्यम से लेखक ने अपनी अस्तित्व चेतना के लिए संघर्षरत आदिवासी मानस चेतना को प्रस्तुत किया है।

उन्होंने सामाजिक एवं सांस्कृतिक बिन्दुओं को लेकर जिस तरह से 'कुर्राटी' उपन्यास की रचना की है , वह सराहनीय है। समाज को उसकी आवश्यकता है। उपन्यास शोषितों, आदिवासियों के उत्पीडन के प्रति विरोध दर्ज करते हुए , मानवीय और सम्मान के व्यवहार की बात उठाता है, उनके दर्द को बांटता है। उनके हक की आवाज बुलंद करता है। बडे साहस के साथ उन रूढियों, कुरीतियों, अंधविश्वासों पर प्रहार करता है जो समाज के विकास की धरा में बाधक है। जीवन को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करने वाले कथाकार विपन्नता, दरिद्रता और आभावों के बीच जीवन के शक्ति स्रोतों को तला शते हैं। उनका लेखन आशा, उत्थान और जीवन की विजय का उद्घोष है। पात्र और चरित्र चित्रण की दृष्टि से विचार करते हुए हम कह सकते हैं कि उपन्यास में एक ओर दलित, शोषित, पीडित तथा बदलाव की तीव्र और विरोध भावनाओं से भरे चरित्र हैं तो दूसरी और कूटनीतिज्ञ , भ्रष्टाचारी सरकारी नौकरषाही के प्रतीक पात्र भी हैं। ऐसा अनुभव होता है कि इस उपन्यास के पात्र सामाजिक , सांस्कृतिक और संवैधानिक स्थितियों की

परिणति के रूप में अवतरित हुए हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में बडे रोचक एवं अनुभविक ढंग से बडे पैनेपन के साथ आंचलिकता में आबद्ध पश्चिम मालवा के भील-जनजीवन के माध्यम से जो ताना-बाना उस उपन्यास में बुना गया है उसका सार लेखक ने एक प्रमुख पात्र नागराज षर्मा के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत किया है- "मुझे केवल इतना ही कहना है कि आदिवासियों दलितों पर बेवजह अत्याचार और उनके द्वारा चुपचाप सहते रहने का जमाना अब कोसों दूर पीछे रह गया है। अपने वजूद के लिए संघर्ष करने की शिक्षा देने की आवश्यकता अब इस वर्ग के लिए जरूरी नहीं है।"8

उपन्यास की भाषिक चेतना समृद्ध और बहुआयामी है। भाषा सीधे लोक जीवन में गृहीत है और पात्रों की स्थिति के अनुरूप होती है। प्रत्येक पात्र अपनी भाषा के माध्यम से अपने चरित्र के प्रति पाठकों को जागरूक बना देता है। भाषा सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण औजार है।

श्री दुबे जी अपने उपन्यास लेखन के उद्देश्य के विषय में स्पष्ट करते हैं कि उनका उद्देश्य ग्रामीण आदिवासी जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति और सामाजिक परिवर्तन की छटपटाहट पैदा करना है इसीलिए उनकी औपन्यासिक चेतना बहुआयामी और जीवनानुभावों से सम्पन्न है।

निष्कर्ष

आदिवासी अंचल की सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराओं को पूरी तरह सुरक्षित रखने का आग्रह के साथ ही लेखक ने अनाव श्यक रूढियों और अंधविश्वासों से मुक्ति की प्रेरणा भी दी है। लेखक ने सरलता के साथ यह समझाने का प्रयत्न किया है कि आधुनिक चिंतन की मुख्यधारा से जुडने के लिए भोगवाद और भौतिकवाद की दौड में सम्मिलित होना आवष्यक नही है। हमें अपने संस्कारों को सुरक्षित रखते हुए केवल विकास में बाधक रूढियों और अंधविष्वास से मुक्ति चाहिए। इस प्रकार हम कह सकते है कि इस उपन्यास में आदिवासी समाज को अपनी सामाजिक स्थिति में परिवर्तन हेतु जागरण संदेश दिया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ

1 कुर्राटी पृष्ठ 22
2 शोध समावित पत्रिका भाग-11, पृष्ठ 1,2
3 कुर्राटी पृष्ठ 172
4 कुर्राटी पृष्ठ 265
5 कुर्राटी पृष्ठ 121
6 कुर्राटी पृष्ठ 122
7 कुर्राटी पृष्ठ 146
8 कुर्राटी पृष्ठ 174